परिचय :–

संसदात्मक प्रजातंत्र में मंत्रियों और लोकसेवकों के मध्य परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहते हैं। इन्हें प्रशासनिक यान के दो पहिए कहा जा सकता है। मंत्रियों द्वारा निर्मित प्रशासनिक नीतियों के कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व लोकसेवकों पर रहता है। लोकसेवकों का कार्य नीति के क्रियान्वयन तक ही सीमित नहीं है वरन् वह उनको बनाने में भी (मंत्रियों को) अपनी विशिष्ट सलाह देते हैं। मंत्री यद्यपि अपने विभाग के अध्यक्ष होते हैं, तथापि विभाग के वास्तविक अनुभवों और प्रशासनिक बारीकियों का उन्हें प्रायः ज्ञान नहीं होता। मंत्रिगण तकनीकी विषयों अथवा प्रशासन की गहराईयों में पहुंचने की सामर्थ्य नहीं रखते। यद्यपि मंत्रियों को भी जनता की समस्याएँ पृथक् रूप से जानने का अवसर प्राप्त होता है, तथापि वे उनका सर्वेक्षण उतने तीक्ष्ण तथा विश्लेषणात्मक रूप में नहीं कर पाते जितना कि असैनिक कर्मचारी करते या कर सकते हैं। मंत्रियों के लिए ऐसा होना निम्नलिखित कारणों से स्वाभाविक भी है– प्रथम, मंत्री–पद पर उनकी नियुक्ति राजनीतिक आधर पर होती है। राजनीतिक दल में उनकी स्थिति, उनके व्यक्तित्व, उनकी व्यवहारिक एवं समान्य योग्यता, प्रधानमंत्री की दृष्टि में उनका महत्व आदि के आधार पर उन्हें मंत्री–पद दिया जाता है न कि उन्होंने कोई विशिष्ट प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण की है। दूसरे, मंत्रीगण अस्थाई रूप से अपने पद पर रहते हैं। उनका कार्यकाल अनिश्चित होता है और वे किसी विभाग के स्थाई अध्यक्ष नहीं होते। वे आते हैं और चले जाते हैं अतः अपना सारा समय और श्रम लगाकर उनसे विभाग की बारीकियों को जानने की आशा नहीं की जा सकती। एक समय में उनके लिए प्रशासन का पूरा–पूरा ज्ञान कर सकना सम्भव नहीं होता। तीसरे, मंत्रिगण राजनीतिक प्रपंचों और गतिविधियों में इतने फँसे रहते हैं कि प्रशासन के वास्तविक कार्य को संचालित करने का उन्हें बहुत कम हो पाता है। मंत्रियों को संसद् में, जनता में एवं अन्य स्थानों पर विभिन्न उत्तरदायित्वों को पूर्ण करना पड़ता है। इन सबके बाद उनके पास इतना अधिक समय नहीं बच पाता कि वे प्रशासनिक मामलों में अधिक रुचि ले सकें अथवा गहराई से जाँच कर सकें। उक्त कारणों से मंत्रियों को नौसिखिए या अविशेषज्ञ कहा जाता है। दूसरे शब्दों में वे ऐसे व्यक्ति हैं जो पेशेवर प्रशासक नहीं होते, जिन्हें प्रशासन सम्बन्धी कोई प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता है और जिन्हें प्रायः प्रशासन का पर्याप्त अनुभव नहीं होता। वे केवल राजनीतिक प्रशासक होते हैं।

मंत्री–लोक सेवक संबंध :–

मन्त्री अपने विभाग की प्रशासकीय नीति बनाता है, प्रशासनिक ढाँचे का निर्धारण करता है, अपने विभाग के अधिकरियों और कर्मचारियों की नियुक्ति, सेवा स्थिति तथा अनुशासन की समस्याएं नियंत्रण भी उसी के माध्यम से परिचालित होता है। यह मंत्री प्रशासक से अपनी भर्ती, योग्यता, राजनीतिक प्रकृति तथा उत्तरदायित्व सभी से भिन्न होता है। प्रशासक या लोक सेवक जो मंत्री के विपरीत विशेषज्ञ, योग्य, स्थायी, गैर राजनीतिक एंव नियुक्ति प्राप्त व्यक्ति होते हैं। भारतवर्ष में जहां ब्रिटिश पद्धति की राजनीति का प्रशासन सदियों से रहा है विशेषज्ञ एवं अपरिपक्व लोग पूरक के रूप में अपनी भूमिकाएं निभाते रहे हैं। स्वतांत के बाद इस सम्बन्ध में जो जटिलता आई है उसके अनेक कारण हैं। प्रशासन का भीमकाय विस्तार, मन्त्रियों की दुर्बल स्थिति, प्रशासन का केन्द्रीय स्वरूप, राजनीतिकरण का जोश, विशेषज्ञों का प्रशासन में पदार्पण अदि कुछ ऐसी बातें हैं जिन्होंने मनी प्रशासक सम्बन्धों में कुछ उलझनें उत्पन्न की हैं। मन्त्री यह मांग करने लगे हैं कि प्रशासक उनके इतने अधीन होने चाहिए कि वे अपनी नीतियों को उनसे क्रियान्वित करवा सकें और उनकी तटस्थता या योग्यता राजनीतिक विकास के मार्ग में बाधा न बने। इसी प्रकार राजनीतिक विकास के बाद अपनी केन्द्रीय स्थिति से अपदस्थ किये जाने वाले प्रशासक ये कहने लगे हैं कि राजनीतिक नियंत्रण का अर्थ राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। प्रशासनिक स्वायत्ता का नारा राजनीतिज्ञों द्वारा प्रशासनिक गैर जिम्मेदारी कहा जा रहा है और इसी प्रकार मन्त्रियों द्वारा कठोर नियंत्रण की बात प्रशासकों द्वारा राजनीतिक अराजकता कही जाने लगी है।

मंत्री के नियंत्रण को प्रशासकीय अध्यक्षता का स्वरूप कहा जा सकता है जिसमें नीति निर्माण और नीति क्रियान्वित सम्बन्धी

श्वेता तिवारी
शोधार्थी
राजनीति विज्ञान उदयपुर, राजस्थान

अन्तिम शब्द कहने का अधिकार केवल मंत्री को ही है। प्रशासक सलाहकार हो सकता है; किन्तु उसकी सलाह चेतावनी अथवा धमकी का रूप नहीं ले सकती। नीति का हर स्तर मंत्री द्वारा नियमित किया जाना चाहिए और प्रशासन व मंत्री में यदि मतभेद हैं तो प्रशासक को उसी सीमा तक अपने कदम वापिस हटाने पड़ेंगे।

इस नियंत्रण का एक अन्य आधार एक ओर संसदीय जनतन्त्र की व्यवस्था है तथा दूसरी और प्रदत्त विधि के प्रावधान हैं। सत्ता संसद की थी, उसने मंत्री को दी और मंत्री ने प्रशासन को। अतः प्रशासन को प्रत्यक्ष रूप से किसी के प्रति अनिवार्य रूप से उत्तरदायी होना चाहिए। फिर मंत्री प्रशासन की तुलना में अधिक सच्चा प्रतिनिधि है और संसद, दल तथा जनता उसे नियन्त्रित करने के लिए पर्याप्त हैं। अतः मंत्री प्रशासन को नियंत्रित करेगा, प्रशासन मंत्री को नहीं। जनतांत्रिक परिवर्तन के क्रम में प्रशासन स्थायितत्व का प्रतीक है और मंत्री निरन्तरता का। अतः प्रशासन को मंत्री के निर्देश लेने और मानने होंगे।

इस नियंत्रण का परिचालन मुख्य रूप से विधि निर्माण, निर्देश, कर्मचारी प्रशासन तथ पोस्टकॉर्ड विधियों से होता है। सारे नियम, मन्त्री के माध्यम से वैधानिकता प्राप्त करते हैं। वह प्रशासन को स्थायी और विस्तृत निर्देश दे सकता है। प्रशासनिक क्रियाओं का पर्यवेक्षण, समन्वय, संगठन, बजट तथा नियंत्रण के अन्य यन्त्र मन्त्री के माध्यम से संचालित होते हैं। अधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, सेवा–स्थिति स्वयं मन्त्री द्वारा निर्धारित नीति का परिणाम होते हैं।

इस प्रकार मन्त्रीय–नियंत्रण प्रशासनिक दृष्टि से यद्यपि आवश्यक और व्यावहारिक माना जाता है कि मंत्री का नियंत्रण उनकी तटस्था को तोड़ते है, उनमें अनुशासनहीनता जगाता है और उन्हें राजनीतिक हस्तक्षेप का शिकार बनाकर अकार्यकुशलता और भ्रष्टाचार की तरफ मोड़ता है। इसके विपरीत मन्त्री का पक्ष यह कहकर समर्थित किया जाता है कि मंत्री के कठोर नियंत्रण के बिना प्रशासक नीति की अनुपालना नहीं करते और स्वंय निहित स्वार्थो के प्रतिनिधि बन जाते हैं। जनतंत्र की प्रगति को धीमा करते हैं और समाज को राजनीतिक ह्रास की ओर ले जाते हैं। प्रशासन में समन्वय स्थापित किया जाय दोनों अभिनेताओं पर व्यवस्था के अलग–अलग नियंत्रण प्रभावशाली बनाये जायें और उनकी योग्यता एवं भूमिका का असन्तुलन इतना न बढ़ने दिया जाय कि व्यवस्था की वैधता टूट जाये। मंत्री को उसके दल, समाचार–पत्रों, जनमत तथ चुनाव प्रक्रियाओं के द्वारा अनुशासित व्यवस्था बदली जाय। इसी प्रकार प्रशासकों को परम्पराओं द्वारा तथा लोक सेवा सुधारों द्वारा ऐसी स्थिति में लाया जाय कि उनकी योग्यता अनुशासनहीनता का असन्तुलन रोक सके। जब तक राजनीतिज्ञों के धरातल अथवा बौद्धिक स्तर ऊंचा नहीं होता अथवा प्रशासकों का "एलिटिज्म" (अभिजनवाद) घटकर उन्हें जनप्रतिनिधियों के समीप नहीं लाता तब तक यह कहा जाता है कि प्रतिबद्ध नौकरशाही का विचार भारतीय प्रशासन में भारतीय राजनीति के प्रभाव के प्रतिकूल है जो सामान्य रूप से समाजवादी विचारधारा की परछायी लगती है। सोवियत रूस के मॉडल (प्रतिमान) में नौकरशाही का स्वरूप योग्यता आधारित सेवीवर्ग होने की अपेक्षा विचारधारा से अनुप्राणित तक "काडर ब्यूरोक्रेसी" का विचार है जिसे राजनीति के यन्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

प्रशासन के राजनीतिकरण को सोवियत रूस राजनीतिक नियंत्रण का एक आवश्यक अंग मानता है और वहां पर प्रशासकों की भूमिका नीति निर्माण में सलाह न देना होकर उसे कुशलतापूर्वक क्रियान्वित करना है। देखना यह है कि वर्तमान सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाचोव की बहु–चर्चित "खुलापन" "पुनर्रचना" और "सोच के नये तरीके" की नीतियों का वहां के प्रशासकों पर क्या प्रभाव पड़ता है। अमेरिका में यह नियंत्रण वहां के प्रशासनतां को अर्ध–राजनीतिक बना का पूरा किया गया है। वहाँ प्रत्येक राष्ट्रपति और राज्यपाल अपने राजनीतिक सहयोगियों के साथ–साथ अपने प्रशासन कर्मियों को भी एक अवधि विशेष के लिए नियुक्ति दारा लाता है और उनकी व्यक्तिगत निष्ठा और स्वामिभक्ति, उनकी नियुक्ति पद्धति द्वारा स्वयंमेव निर्धारित होती है।

अंग्रेजी व्यवस्था में प्रशासनतंत्र कार्यकारिणी का नियंत्रण मानकर चलता है और उसकी विशेषज्ञता उसके मार्ग में बाधा नहीं बनती। इंगलैण्ड ने जिस प्रकार के प्रशासन का विकास किया उसमें प्रतिबद्धता के लिए कोई स्थान नहीं है। ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था प्रशासक को तटस्थ, अनाम, बेनाम और सामान्यज्ञ मानकर चलती है औरउससे यह अपेक्षा करती है कि वह नीति निर्माण और नीति क्रियान्विति दोनों में प्रभावी भूमिका निभाये। प्रतिबद्धता इस दिशा में सेवा का राजनीतिकरण करती है जिसके फलस्वरूप मन्त्रिमण्डलीय नियंत्रण एक दुविधा और विडम्बना बन सकता है। भारत के सन्दर्भ में, मन्त्री के नियंत्रण अथवा मन्त्री प्रशासन के सम्बन्धों के लिए जो तर्क दिये जाते

रहे हैं वे ब्रिटिश परम्परा के परंपरावादी तर्क थे। सिद्धान्त यह था कि प्रशासक राजनीति से तटस्थ, मंत्री का परामर्शदाता बन सकेगा। यद्यपि भारत में एक दल प्रधान व्यवस्था ने इस स्थिति को सुदृढ़ करने में काफी सहायता की, किन्तु जैसे–जैसे विकास प्रशासन का कार्य सामने आने लगा वैसे–वैसे ही मंत्री व प्रशासन के बीच नीति एवं भूमिका सम्बन्धी मतभेद पैदा होने लगे। तटस्थता का सिद्धान्त टूटा और शासन और प्रशासन दोनों ही यह अनुभव करने लगे कि मन्त्रीय नियंत्राण और प्रशासकीय स्वायत्तता का साम×जस्यवादी ब्रिटिश सिद्धान्त भारत के सन्दर्भ में पुनर्निरीक्षण चाहता है। प्रतिबद्धता शब्द से आशय यदि लोक–प्रशासन की अधीनस्थता से है तो उस पर कोई विवाद नहीं हो सकता। सभी प्रशासक यह चाहेंगे कि कार्यकुशलता, दक्षता, परिणाम प्राप्ति या उत्पादन आदि क्षेत्रों में वे संपूर्ण निष्ठा के साथ प्रतिबद्ध हों इसी प्रकार से यदि प्रश्न यह है कि वे संविधान के मूल आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध हों तो इसमें भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। राजनीति को नीति निर्माण के रूप में अपना नियंक मानना भी उन्हें प्रतिबद्धता नहीं लगती किन्तु प्रतिबद्धता के क्षेत्र में वास्तविक विरोध जिस प्रश्न पर है वह यह है कि क्या प्रतिबद्धता पद विशेष से जुड़कर व्यक्ति विशेष के प्रति हो सकती है तथा दूसरे, क्या प्रतिबद्धता के नाम पर नौकरशाही को जानबूझकर किसी विशेष विचारधारा के अनुसार काम करने के लिए विवश किया जा सकता है। जो तर्क राजनीतिज्ञों या मन्त्रियों की ओर से दिये जाते रहे हैं वे सारांश रूप में यह मानते हैं कि नौकरशाही का कार्य करने का अपना एक क्षेत्र है, किन्तु अन्ततोगत्वा उसकी ऐसी कोई भूमिका नहीं है जो उसे राजनीतिज्ञ या मन्त्री से श्रेष्ठ या उच्चतर सिद्ध कर सके। यह भी कहा जाता है कि मंत्री का हस्तक्षेप जैसी कोई चीज नहीं होती चूंकि मंत्री का प्रत्येक कार्य उसके विभाग में उचित एवं वैध है। इतना ही नहीं जो लोक प्रशासक मन्त्री के आदेशो की अवहेलना करें, उन्हें दण्डित किया जाना चाहिये चूंकि प्रशासनिक अनुशासन ऐसा चाहता है और यदि मंत्री की नीतियों को योग्य प्रशासक अव्यावहारिक बतलाकर उसका मखौल उड़ाये तो यह स्थिति जनतंत्र का उपहास है। कुशल से कुशल प्रशासक को इस आधार पर राजनीति की अधीनस्थता स्वीकारनी होगी।

जनतंत्र में राजनीति का वर्चस्व एक पूर्व स्थिति है। मन्त्रियों का यह कहना रहा है कि उनकी जननीतियों को वे प्रशासक क्रियान्वित नहीं कर सकते जो जनसाधारण के सम्पर्क नहीं है। दूसरे शब्दों में, जो प्रशासनतंत्र प्रतिनिधित्वूपर्ण नहीं है, यदि वह जनप्रतिनिधियों का कहना नहीं मानते तो अनुत्तरदायी प्रशासन, अनुत्तरदायी शासन का स्वरूप धारण कर लेगा। अतः मन्त्री चाहे वह कैसा ही राजनीतिज्ञ हो वह लोक प्रशासकों की योग्यता एवं तटस्थता का सम्मान करते हुए उनके अनुत्तरदायित्वपूर्ण आचरण को केवल उनकी योग्यता के आधार पर स्वीकार नहीं कर सकता। इसके विपरीत, लोक प्रशासकों का कहना है कि उनमें तथा उनके राजनीतिक झगडों के बीच इतनी बड़ी खाई है कि उनसे किसी भी प्रकार का राजनीतिक संवाद करना असम्भव है। राजनीतिज्ञ इतनी लघु दृष्टि रखते हैं कि वे लोकहित के नाम पर लोक–हानि को उचित बतलाते हैं। वे नीति निर्माता हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वे विशेषज्ञों के पक्ष की अवहेलना करें। दूसरे शब्दों में प्रशासन राजनीति पर एक नियंत्रण के रूप में होना चाहिए और प्रतिबद्ध नौकरशाही राजनीतिज्ञों को गुमराह कर सकती है। प्रशासकों का यह कहना है कि हस्तक्षेप और नियंत्राण शब्द की सीमा–रेखाएं कानून से खींची जा सकती हैं और मन्त्री यदि चाहे तो प्रतिबद्धता का सवाल उठाये बिना प्रशासकों को यह बतला सकता है कि उनसे क्या–क्या अपेक्षित है और कौन–कौन से क्षेत्रा में उसका कितना प्रभाव उन्हें मानना होगा। प्रशासन–प्रतिबद्धता का भारत में इसलिए भी विरोध है कि इससे सेवाओं का राजनीतिकरण जिस गति से होगा वह राजनीति में अस्थिरता ला सकता है, व्यवस्था को तोड़ सकता है और प्रशासकों के मनोबल को गिराकर उन्हें सार्वजनिक लूट और भ्रष्टाचार की ओर उन्मुख कर सकता है। प्रतिबद्धता का विचार सेवाओं की तटस्थता पर आघात है और उनकी योग्यता के लिए एक भारी खतरा बन सकता है। प्रशासक राजनीति का सम्मान करते हैं; किन्तु वे यह नहीं चाहते कि नियंत्रण के नाम पर उनकी स्थिति दासता की बन जाय। भारतवर्ष में समाजवादी व्यवस्था के अभ्युदत के साथ प्रतिबद्ध नौकरशाही नारे ने बल पकड़ा। जब प्रतिबद्ध न्यायपालिका का विचार भारती राजनीति को दिया जाने लगा है तो ऐसा लगता है कि प्रशासन की प्रतिबद्धता तो होनी ही चाहिए। कितने ही प्रशासक भी अपनी इस भूमिका को बदलने और स्वीकार करने के लिए सामने आयें हैं। कुछ का मत है कि यदि समाजवादी नियुक्तियां और प्रशासन चलता है तो ब्रिटेन जैसे तटस्थता एवं राजनीतिक निष्पक्षता सम्भव नहीं हो सकती। वे यह भी कहने लगे हैं कि एक वकील की भांति प्रशासक को भी एक सलाहकार या

कन्सलटेन्ट बन जाना चाहिए। वह यह जानते हैं कि कौनसी नीतियां गलत हैं, अपनी बात विशेषज्ञ के रूप में कहे और उसका संपूर्ण उत्तरदायित्व मंत्री पर छोड़ दे। यदि राजनीतिज्ञ आवश्यकता से अधिक दलगत राजनीति में फसें हैं तो वैसे भी प्रशासक की सलाह उन्हें अच्छी नहीं लगेगी। अतः नीतियों को प्रभावित करने की सलाह का आदर करें। हस्तक्षेप की तरह प्रतिबद्धता भी एक दृष्टिकोण का प्रश्न है और यदि हस्तक्षेप प्रशासकों का नारा है तो प्रतिबद्धता मन्त्रियों की मांग है। भारत के प्रशासन में संसदीय राजनीति इस भूमिका को और भी जटिल बनाती है कि प्रतिबद्धता सामान्यज्ञ या विशेषज्ञ में से किस में अधिक हो सकती है, यह प्रश्न भी नियंत्रण की सीमा रेखा मेंघसीट कर लाया जा सकता है।

वैसे तो सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ अपने आप में भारतीय प्रशासन की एक एतिहासिक एवं ज्वलन्त समस्या है, किन्तु सामान्यज्ञ सेवाओं का यह कहना है कि यदि प्रतिबद्धता जैसी स्थिति राजनीति के साथ समन्व्य करने के लिए आवश्यक है तो उसे एक सामान्य प्रशासक ही सरलता से ला सकता है। विशेषज्ञ एक सलाहकार के रूप में अथवा नीति–क्रियान्वयक के रूप में एक ऐसा व्यक्ति होता है जो राजनीति के वैचारिक दबावों को सरलता से न समझ सकता है और न स्वीकार कर सकता है। अपने क्षेत्र में उसका बौद्धिक धरातल जिस स्तर पर होता है वह उसके व्यक्तित्व को अजनतांत्रिक प्रदान करता है। उसे अपने व्यवसाय में इतनी निष्ठा होती है कि वह व्यक्ति और नीतियों के प्रतिबद्ध नहीं हो सकता। अतः यह तर्क दिया जाता है कि यदि भारतीय मन्त्री प्रशासन को कठोरता से नियन्त्रित करना चाहता है तो उसे प्रशासन के उच्च स्तरों पर विशेषज्ञों को नहीं रखना चाहिए चूंकि मतभेद की खाई एवं विरोध तथा अवज्ञा की स्थिति विशेषज्ञ के साथ अधिक गहरी और गम्भीर होगी।? इसके विपरीत विशेषज्ञों का यह तर्क है कि प्रतिबद्धता का अर्थ यदि मंत्री की अनुरुपता है तो सलाहकार जैसी कोई स्थिति नहीं रहती। सामान्यज्ञ जो अपना विषय नहीं जानते स्वंय राजनीतिज्ञ की तरह अनिभज्ञ लोग हैं और उन्हें यदि प्रतिबद्धता की सीमा में और बांध दिया गया तो वह मन्त्रियों के अनुचर मात्र बनकर रह जायेंगे। प्रतिबद्धता लोचशीलता चाहती है तो उसे अपने अप में एक सनतुलनकारी स्थिति लाने में भी सहायक होना चहिए। अतः सामान्यज्ञ प्रशासक का तर्क उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता बना सकता है चूंकि प्रतिबद्धता की योग्यता के नाम पर यह भूमिका निभा सकेगा जिसके लिए वह अपने आपको उपयुक्त पात्र समझता है।

सामान्यज्ञ विशेषज्ञ प्रतिस्पर्धा या विरोध ने एक ओर जबकि सेवाओं की असमानता को सामाजिक प्रतिष्ठता के प्रशनों के साथ जोड़ दिया है वहां दूसरी ओर उसका एक केन्द्रीय तत्व यह भी है कि मंत्री को सलाह कौन दे? अखिल भारतीय सेवाओं ने इस भूमिक पर एकाधिकार कर रखा है और मंत्री को सलाह देने के नाम पर वे अपना वर्चस्व बनाये हुए हैं। प्रबिद्धता को जबकिवे स्वयं नकारते हैं तो दूसरी ओर वे अपने आपको विशेषज्ञों की तुलना में अधिक प्रतिबद्ध बदलाते हैं। यह स्थिति संक्रमणकाल का लाभ उठाने की है जिसमें एक अेर सामान्यज्ञ सेवाएं राजनीति में दयनीय हैं तो दूसरी ओर विशेषज्ञ सेवाओं की समानता की मांग को कुचलना चाहती है। मंत्री संसदीय राजनीति का आधार स्तम्भ है और वह नीति निर्माता, नीति नियंत्रक व नीति क्रियान्वयक है। प्रशसक उसका सलाहकार (चाहे वह अप्रतिबद्ध सामान्यज्ञ हो या प्रतिबद्ध विशेषज्ञ या इसके विपरीत सभी स्थितियों में प्रश्न यह है कि मंत्री किस सीमा तक प्रशासन तंत्र को किस प्राकर नियन्त्रित करें समाजवादी देशों ने प्रशासन की सवायत्तता छीन कर राजनीति और विचारधारा के वर्चस्व को मंत्री के नियंत्रण के रूप में देखा है। ब्रिटिश मॉडल अथवा फ्रेंच प्रतिमान जो सेवाओं को एक विशेषाधिकार की स्थिति में रखकर राजनीतिकरण कि प्रक्रिया से उन्हें बचाना चाहते हैं, ब्येरोक्रेसी को पॉलिटिक्स का नियांक व सन्तुलक मानते हैं। भारतवर्ष रूस की स्थिति में नहीं है, किनतु ब्रिटेन की स्थिति भी अब इतिहास बन चुकी है। अमेरिकी अर्द्ध–राजनीतिक प्रशासन संसदीय व्यवस्था से तालमेल नहीं खाता। अतः भारत के सन्दर्भ में मन्त्राी प्रशासक सम्बन्धों का एक ऐसा प्रतिमान बनाना या विकसित करना होगा जो ब्रिटेन से अधिक राजनीतिक हो औरसोवियत रूस कम प्रतिबद्ध तथा अमेरिका की तरह अर्द्ध–राजनीतिक एवं फ्रांस की तरह राजनीति का सन्तुलनकर्त्ता बन सके। इस प्रतिमान के कुछ निश्चित सिद्धान्त नहीं हो सकते; किन्तु राजनीतिक आवश्यकताओं, दबाओं एवं अपरिहार्यकारणों के प्रसंग में यह स्थिति स्वयं उभरेगी और भारतीय प्रतिमान इस दृष्टि से सबका मिश्रण होते हुए भी सबके पृथक तथा स्वतंत्रा हो सकता है।

श्वेता तिवारी
शोघार्थी
राजनीति विज्ञान उदयपुर, राजस्थान

संदर्भ सूची :–

1. सुशमा यादव, बलवान गौतम, लोक प्रशासन सिद्वांत एवं व्यवहार, ओरयण्ट ब्लैकस्वॉन पब्लिशन, हैदराबाद 163–164

2. अभय प्रसाद सिंह, समकालीन भारत में विकास की प्रक्रिया और सामाजिक आंदोलन, ओरियण्ट ब्लैकस्वॉन, हैदराबाद, पृ. 1131–132

3. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर पृ. 216–217

4. डॉ. बी. एल. फड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिशन्स, आगरा, पृ. 294–296

5. अवस्थी एवं माहेशवरी, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 271–272

6. बिधुत चक्रवती, प्रकाश चंद, वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन, सिद्धांत और पद्धतियाँ, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 331–332

7. सुभाष कश्यप, भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 54–55

8. डॉ. वैशाली पवार, डॉ. संजय लांडगे, लोक प्रशासन, डायमंड पबिलेकशन्स, पुणे पृ. 54–55

9. डॉ. रूसकी बसु, लोक प्रशासन संकलपनाएं एंव सिद्धांत, जवाहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 224–225

10. राज यादव, लोक प्रशासन, पियर्सन पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, पृ. 176–177